

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 2 अध्याय 5: ब्रह्माण्ड का वर्णन

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



कारण-जल पर तैरते एक स्वर्णिम अण्ड से विराट् पुरुष प्रकट होते हैं — और उनके विशाल, देदीप्यमान स्वरूप के भीतर ज्ञानीजन ब्रह्माण्ड के समस्त लोकों को, ऊपरी तथा अधोवर्ती दोनों को, देखते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पूर्व अध्याय एक गुप्त उपदेश-परम्परा को प्रकट करते हुए समाप्त हुआ था: जो ज्ञान श्रीशुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित को देने जा रहे थे, वह कभी ब्रह्मा ने ऋषि नारद को सिखाया था, और उससे पूर्व स्वयं श्रीहरि ने ब्रह्मा को। यह पञ्चम अध्याय उसी आन्तरिक द्वार को खोलता है। यहाँ श्रीशुकदेव मरणासन्न राजा के लिए उस प्राचीन संवाद को पुनः सुनाते हैं, जिसमें नारद ने अपने पिता ब्रह्मा से ब्रह्माण्ड की सच्चाई समझाने का अनुरोध किया था — और ब्रह्मा ने समस्त शास्त्रों में सबसे उल्लेखनीय स्वीकारोक्तियों में से एक के साथ उत्तर दिया, और तत्पश्चात् यह व्यापक वर्णन किया कि ब्रह्माण्ड किस प्रकार, चरण-दर-चरण, परम भगवान् से प्रकट होता है। हम उस क्रम-विकास का ठीक उसी अनुक्रम में अनुसरण करेंगे: तीन गुणों की हलचल से लेकर, महत् तथा अहंकार से होते हुए, सूक्ष्म तथा स्थूल तत्त्वों, इन्द्रियों तथा उनके अधिष्ठाता देवताओं तक, और अन्ततः उस ब्रह्माण्ड-अण्ड तक जिससे विराट् पुरुष — समस्त लोकों को धारण करने वाला वह सार्वभौमिक स्वरूप — प्रकट होते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 2 (द्वितीय स्कन्ध)
- अध्याय: 5 (पञ्चम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: ब्रह्माण्ड का वर्णन
- मुख्य वक्ता: स्वयम्भू ब्रह्मा, जो ऋषि नारद को उत्तर देते हैं — यह संवाद श्रीशुकदेव गोस्वामी राजा परीक्षित को सुनाते हैं, और सूत गोस्वामी उसे पुनः नैमिषारण्य के ऋषियों को कहते हैं
- मुख्य श्रोता: ऋषि नारद, ब्रह्मा के पुत्र (कथित संवाद के भीतर); राजा परीक्षित (श्रीशुकदेव से सुनते हुए); तथा ऋषि शौनक एवं नैमिषारण्य का ऋषि-समुदाय (सूतजी से सुनते हुए)
- मुख्य स्थान: सृष्टि का आदिम प्रभात, ब्रह्मा के कमल-आसन पर; जो श्रीशुकदेव के परीक्षित को दिए गंगा-तटीय उपदेश तथा नैमिषारण्य के वन-आश्रम के भीतर कथित है
- मुख्य विषय-वस्तु: ब्रह्मा का यह प्रकटन कि वे स्वयं सृष्टि के यथार्थ स्रोत नहीं हैं — केवल नारायण (वासुदेव) ही हैं — तत्पश्चात् ब्रह्माण्डीय क्रम-विकास तथा विराट् पुरुष के शरीर में स्थित चौदह लोकों का अनुक्रमिक वर्णन
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 2, अध्याय 5, श्लोक 1–42
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

नारद का अपने पिता से प्रश्न

अध्याय का आरम्भ तब होता है जब ऋषि नारद हाथ जोड़े और जिज्ञासु मन से सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के समक्ष उपस्थित होते हैं। उनके आरम्भिक वचन श्रद्धा का कार्य हैं।

नारद उवाच

देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावन पूर्वज ।

तद् विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥ १ ॥

nārada uvāca deva-deva namas te 'stu bhūta-bhāvana pūrvaja tad vijānihi yaj jñānam ātma-tattva-nidarśanam

अर्थ: नारद ने कहा: हे देवों के देव, समस्त प्राणियों के रचयिता, सबके आदिपुरुष — आपको मेरा नमस्कार। कृपया मुझे वह ज्ञान प्रदान कीजिए जो आत्म-तत्त्व की सच्चाई का साक्षात्कार कराता है। (स्कन्ध 2, अध्याय 5, श्लोक 1)

तत्पश्चात् उनके प्रश्न आते हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रस्तुत किए गए हैं। इस ब्रह्माण्ड की सच्चाई मूलतः क्या है — इसके लक्षण क्या हैं, यह किस पर आधारित है, किसके द्वारा रचा गया, अन्ततः कहाँ विश्राम पाता है, किस शक्ति से शासित है, और यह मूलतः क्या है? नारद अपने पिता को बताते हैं कि यह सब निश्चय ही ब्रह्मा के ज्ञान के भीतर होगा, क्योंकि ब्रह्मा भूत, वर्तमान तथा भविष्य — सबके स्वामी हैं; समस्त ब्रह्माण्ड उनकी चेतना में हथेली पर रखे आँवले के फल के समान स्थित है। फिर भी नारद और आगे बढ़ते हैं, और यहीं उनकी जिज्ञासा गहन हो उठती है। वे पूछते हैं कि ब्रह्मा के अपने ज्ञान का स्रोत क्या है, ब्रह्मा स्वयं किसके द्वारा आश्रित हैं, और ब्रह्मा का आवश्यक स्वरूप क्या है। नारद यह निरीक्षण करते हैं कि जैसे मकड़ी अपने ही शरीर से जाल बुनती है और उसी में क्रीड़ा करती है, वैसे ही ब्रह्मा समस्त प्राणियों को अपने ही से प्रकट करते प्रतीत होते हैं और फिर भी अपरिवर्तित रहते हैं। वे स्वीकार करते हैं कि वे किसी भी वस्तु को — चेतन अथवा अचेतन, उच्च, निम्न अथवा मध्यम — नहीं जानते जिसका स्रोत ब्रह्मा के अतिरिक्त कुछ और हो। और फिर भी एक बात उन्हें व्याकुल करती है: यह तथ्य कि स्वयं ब्रह्मा, परम शासक, ने कभी गहन तपस्या की थी। सृष्टिकर्ता स्वयं को ध्यान तथा तपस्या की आवश्यकता क्यों होगी, जब तक कि उनसे भी कोई उच्चतर न हो? यही एकमात्र, विनम्र सन्देह सम्पूर्ण अध्याय का आधार-बिन्दु है।



ऋषि नारद कमल-आसन पर विराजमान अपने पिता ब्रह्मा के समक्ष नमन करते हैं और उनसे ब्रह्माण्ड की सच्चाई तथा उनकी अपनी सृजन-शक्ति के स्रोत को प्रकट करने का अनुरोध करते हैं (श्लोक 1-8)।

“जब तक तुम उन्हें न जानो, मेरी माहेमा मेरी अपनी प्रतीत होती है”

ब्रह्मा का उत्तर असाधारण है — अपने ही पद की रक्षा नहीं, अपितु उसका आनन्दपूर्ण समर्पण। वे सबसे पहले प्रश्न की ही प्रशंसा करते हैं: यह प्रशंसनीय है, वे अपने करुणामय पुत्र से कहते हैं, क्योंकि इसने उन्हें भगवान् की महिमा प्रकट करने का अवसर दिया है। नारद ने उनके विषय में जो कहा है वह असत्य नहीं, ब्रह्मा स्वीकार करते हैं — किन्तु केवल एक सीमित अर्थ में। जब तक कोई उन्हें नहीं जान लेता जो ब्रह्मा से भी महान् हैं, तब तक यह समस्त आभासी महिमा स्वयं ब्रह्मा की प्रतीत होती है। फिर सृष्टिकर्ता एक देदीप्यमान उपमा देते हैं: जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह तथा तारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करते प्रतीत होते हैं, यद्यपि वस्तुतः वह स्वयं-प्रकाशित भगवान् द्वारा पहले से ही प्रकाशित है, वैसे ही ब्रह्मा केवल ब्रह्माण्ड को प्रकट करते प्रतीत होते हैं, जो वास्तव में उन्हीं भगवान् द्वारा प्रकट है। वे भगवान् वासुदेव को नमन करते हैं और उन्हीं का ध्यान करते हैं। यह केवल माया है, भगवान् की मोहक शक्ति — जिसे जीतना इतना कठिन है — जो लोगों से ब्रह्मा को “ब्रह्माण्ड का पिता” कहलवाती है। वही माया, वे जोड़ते हैं, मोहित आत्माओं से शरीर को अपना ही स्वरूप और उसकी समस्त वस्तुओं को “मेरा” कहलवाती है, यद्यपि यह माया इतनी संकोचशील है कि भगवान् की सीधी दृष्टि के समक्ष भी नहीं ठहर सकती। ब्रह्मा तत्पश्चात् इस स्वीकारोक्ति को उसकी चरम सीमा तक ले जाते हैं, उस श्लोक में जो उनके सम्पूर्ण उत्तर का सैद्धान्तिक हृदय है।

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।

वासुदेवात्परो ब्रह्मन् च चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥ १४ ॥

dravyaṁ karma ca kālāś ca svabhāvo jīva eva ca vāsudevāt paro brahman na cānyo 'rtho 'sti tattvataḥ

अर्थ: सृष्टि के घटक, उनकी पारस्परिक क्रिया, नित्य काल, तथा जीवात्मा की सहज प्रवृत्ति — ब्रह्मा नारद से कहते हैं कि इनमें से किसी का भी भगवान् वासुदेव से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है। (स्कन्ध 2, अध्याय 5, श्लोक 14)

यहाँ ब्रह्माण्ड के सृष्टिकर्ता स्वयं से परे, समस्त कारणों के पीछे स्थित उस एकमात्र कारण की ओर संकेत करते हैं।



स्वयं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, ध्यान में स्वयं-प्रकाशित भगवान् वासुदेव के समक्ष नमन करते हैं, यह घोषित करते हुए कि उनकी अपनी आभासी महिमा वस्तुतः परम भगवान् की है
(श्लोक 9-14)।

नारायण, एकमात्र सत्य

नारद की दृष्टि को यथार्थ स्रोत की ओर मोड़ने के पश्चात्, ब्रह्मा अब नारायण को सबके आधार में स्थित एकमात्र सत्य के रूप में महिमामण्डित करते हैं। नारायण वेदों के लक्ष्य हैं; देवता उनके अंगों से प्रकट हुए हैं; यज्ञ उन्हें प्रसन्न करने के लिए किए जाते हैं, और यज्ञ द्वारा प्राप्त होने वाले लोक भी उनके ब्रह्माण्डीय शरीर के अंग मात्र हैं। अध्याय के सर्वाधिक उद्धृत श्लोकों में से एक में, ब्रह्मा प्रत्येक आध्यात्मिक साधना को एक ही प्रवाह में समेट लेते हैं जो भगवान् की ओर बहता है।

नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ।

नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥ १६ ॥

nārāyaṇa-paro yogo nārāyaṇa-param tapaḥ nārāyaṇa-param jñānam nārāyaṇa-parā gatih

अर्थ: नारायण समस्त योग के परम लक्ष्य हैं; समस्त तपस्या नारायण को प्रसन्न करने के लिए है; समस्त ज्ञान नारायण की ओर उन्मुख है; और समस्त मार्ग नारायण की ओर ले जाते हैं। (स्कन्ध 2, अध्याय 5, श्लोक 16)

भगवान्, ब्रह्मा आगे कहते हैं, एक साथ द्रष्टा तथा शासक हैं; अपरिवर्तनीय होते हुए भी वे सर्वव्यापी हैं। उन्हीं ने ब्रह्मा की रचना की, और केवल जब वे अपनी दृष्टि से प्रोत्साहित करते हैं, तभी ब्रह्मा इस सृष्टि का विकास करते हैं। स्वयं भगवान् अनन्त तथा तीन गुणों — प्रकृति के मोड़ों — से परे हैं, किन्तु यह उनकी माया ही है जो ब्रह्माण्ड के कार्य के लिए उन तीन गुणों को धारण करती है।

सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ।

स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥ १८ ॥

अर्थ: सत्त्व, रजस् तथा तमस् — ये उस भगवान् के तीन गुण हैं जो स्वयं समस्त गुणों से परे हैं; ये तीनों उनकी माया द्वारा पालन, सृष्टि तथा संहार के प्रयोजन से धारण किए जाते हैं। (स्कन्ध 2, अध्याय 5, श्लोक 18)

तत्त्वों, इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं के माध्यम से, ये तीन गुण जीवात्मा को बाँधते हैं — जो सार-रूप में सदा मुक्त है फिर भी अब इस विश्वास में है कि वह शरीर, इन्द्रियाँ तथा मन है, सब एक साथ। वही भगवान्, समस्त इन्द्रिय-बोध से परे, स्वयं को पदार्थ के इन तीन आवरणों के भीतर अपरिचित रूप से ढँक लेते हैं, और समस्त प्राणियों के तथा स्वयं ब्रह्मा के भी शासक बने रहते हैं।

गुणों की हलचल: महत् तथा त्रिविध अहंकार

अब ब्रह्मा सृष्टि के वास्तविक विकास का विवरण आरम्भ करते हैं, और वे क्रम-विकास के एक कठोर अनुक्रम का अनुसरण करते हैं। सृष्टि के प्रभात में अनेक होने के संकल्प से, भगवान् ने काल, कर्म (जीवात्माओं की नियति) तथा स्वभाव (उनकी सहज प्रवृत्ति) को अपनी सेवा में प्रेरित किया — ये सभी पहले से ही उनके अस्तित्व में सुप्त, अव्यक्त रूप में विद्यमान थे। काल ने तीन गुणों की साम्यावस्था को विचलित किया; स्वभाव ने उन्हें रूपान्तरित करना आरम्भ किया; और कर्म से महत् — ब्रह्माण्डीय बुद्धि का तत्त्व — विकसित हुआ, यह सब केवल भगवान् की शक्ति से कार्यरत होते हुए। महत् से, रजस् तथा सत्त्व से अधिशासित होकर रूपान्तरित होते हुए, एक और विकार प्रकट हुआ जो तमस् से अधिशासित था और तीन कारकों से बना था: द्रव्य, ज्ञान तथा क्रिया। यह अहंकार था, ब्रह्माण्डीय अहं अथवा “मैं”-भाव का तत्त्व।

सोऽहङ्कार इति प्रोक्तो विकुर्वन् समभूत्त्रिधा ।

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्विधा ।

द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥ २४ ॥

so 'haṅkāra iti prokto vikurvan samabhūt tridhā vaikārikas taijasaś ca tāmasaś ceti yad-bhidā dravya-śaktiḥ kriyā-śaktir jñāna-śaktir iti prabho

अर्थ: इसे अहंकार कहा गया, जो रूपान्तरित होते हुए त्रिविध हो गया — वैकारिक (सत्त्व-प्रधान), तैजस (रजस्-प्रधान) तथा तामस — जो क्रमशः ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति तथा द्रव्य-शक्ति से सम्पन्न हैं। (स्कन्ध 2, अध्याय 5, श्लोक 24)



सृष्टि के प्रभात में भगवान् काल, कर्म तथा स्वभाव के माध्यम से तीन गुणों को उद्घेलित करते हैं; उनसे महत्, ब्रह्माण्डीय बुद्धि, तथा त्रिविध अहंकार विकसित होते हैं (श्लोक 21-24)।

पाँच तत्त्व एक-दूसरे से प्रकट होते हैं

अहंकार के तामस भेद से पाँच स्थूल तत्त्वों का सूक्ष्म उद्गम प्रकट हुआ, और उससे, रूपान्तरित होते हुए, पहला तत्त्व आया: आकाश। इसका सूक्ष्म गुण तथा विशिष्ट लक्षण शब्द है।

तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः ।

तस्य मात्रा गुणः शब्दो लिङ्गं यद् द्रष्टृदृश्ययोः ॥ २५ ॥

tāmasād api bhūtāder vikurvāṇād abhūn nabhaḥ tasya mātṛā guṇaḥ śabda liṅgaṁ yad draṣṭṛ-dṛśyayoḥ

अर्थ: तामस अहंकार से, जो स्थूल तत्त्वों का स्रोत है, रूपान्तरित होते हुए आकाश विकसित हुआ; शब्द इसका सूक्ष्म गुण तथा विशिष्ट लक्षण है — और यही शब्द द्रष्टा तथा दृश्य को जोड़ने वाला संकेत प्रदान करता है। (स्कन्ध 2, अध्याय 5, श्लोक 25)

तत्पश्चात् यह अनुक्रम सुन्दर तर्क के साथ आगे बढ़ता है, प्रत्येक नया तत्त्व अपने से पूर्व के समस्त तत्त्वों के गुणों को विरासत में पाता है। आकाश से वायु उत्पन्न हुई, जिसका विशिष्ट गुण स्पर्श है, जबकि वह शब्द को भी धारण करती है; प्राण, ऊर्जा, उत्साह तथा बल, ब्रह्मा कहते हैं, वायु के ही अन्य नाम हैं। वायु से अग्नि उत्पन्न हुई, जो रूप के गुण से चिह्नित है, स्पर्श तथा शब्द को भी धारण करती हुई। अग्नि से जल उत्पन्न हुआ, जो रस से चिह्नित है, रूप, स्पर्श तथा शब्द को धारण करता हुआ। और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई, सबसे घना तत्त्व, जो गन्ध से चिह्नित है और अपने भीतर अपने समस्त पूर्ववर्तियों के गुण — रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द — धारण करती है। इस प्रकार आकाश में विद्यमान एकमात्र शब्द-गुण में क्रमशः स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध जुड़ते जाते हैं, जब तक पृथ्वी में सभी पाँच समाहित नहीं हो जाते। यह शास्त्र का अपना विवरण है कि प्रत्यक्ष जगत् किस प्रकार परत-दर-परत गाढ़ा होकर अस्तित्व में आता है।



पाँच स्थूल तत्त्व एक-दूसरे से प्रकट होते हैं — आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी — प्रत्येक अपने से पूर्व के गुणों को विरासत में पाता हुआ, जब तक पृथ्वी सभी पाँच को धारण नहीं कर लेती (श्लोक 25-29)।

इन्द्रियाँ, मन तथा उनके अधिष्ठाता देवता

सृष्टि केवल तत्त्वों से नहीं बनी; वह उन शक्तियों से भी बनी है जिनके द्वारा प्राणी अनुभव करते और कर्म करते हैं। सात्त्विक अहंकार से ब्रह्माण्डीय मन प्रकट हुआ, साथ ही उसका अधिष्ठाता देवता चन्द्रमा, तथा वे दस देवता जो पृथक्-पृथक् रूप से पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँच कर्मेन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं — उनमें दिशाओं के अधिपति, वायु-देव, सूर्य-देव, वरुण, अश्विनी-कुमार, अग्नि-देव, इन्द्र, उपेन्द्र (इन्द्र के छोटे भाई के रूप में भगवान् विष्णु), मित्र तथा प्रजापति हैं। राजस अहंकार से, रूपान्तरित होते हुए, स्वयं दस इन्द्रियाँ विकसित हुईं: पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ — श्रवण, स्पर्श, दृष्टि, रस तथा गन्ध — और पाँच कर्मेन्द्रियाँ — वाक्-इन्द्रिय, हाथ, पैर, तथा जनन एवं उत्सर्जन की इन्द्रियाँ। बुद्धि, ज्ञान की शक्ति, तथा प्राण, वैसी क्रिया की शक्ति, भी इसी राजस अहंकार से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अनुभव के उपकरण उन तत्त्वों के साथ अपने स्थान ग्रहण करते हैं जिन्हें वे जानेंगे।

ब्रह्माण्ड-अण्ड तथा विराट् पुरुष का प्रादुर्भाव

यहाँ यह विवरण अपने महान् मोड़ पर पहुँचता है। जब तक ये श्रेणियाँ — स्थूल तत्त्व, इन्द्रियाँ, मन तथा तीन गुण — पृथक् तथा असम्बद्ध रहीं, ब्रह्मा समझाते हैं, तब तक वे शरीर के रूप में कोई “घर” खड़ा नहीं कर सकीं; वे कुछ भी नहीं रच सकीं। तब, भगवान् की शक्ति से प्रेरित होकर, वे एक-दूसरे के साथ संयुक्त हुईं, आपस में कारण तथा कार्य का सम्बन्ध धारण करते हुए, और मिलकर उन्होंने ब्रह्माण्डीय शरीर तथा वैयक्तिक शरीर दोनों का निर्माण किया। वह स्थूल ब्रह्माण्ड एक विशाल अण्ड के रूप में धारण हुआ, जो कारण-जल पर एक सहस्र वर्षों तक निर्जीव अवस्था में पड़ा रहा। उस अवधि के अन्त में, काल, नियति तथा जीवात्माओं की सहज प्रवृत्ति की सहायता से, भगवान् — सबके जीवनदाता — ने उस अण्ड में जीवन का संचार किया। और तब वह क्षण आया जिसकी ओर सम्पूर्ण अध्याय बढ़ रहा था।

स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः ।

सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥ ३५ ॥

sa eva puruṣas tasmād aṇḍam nirbhīdya nirgataḥ sahasrorv-aṅghri-bāhv-akṣaḥ sahasrānana-śīrṣavān

अर्थ: उस ब्रह्माण्ड-अण्ड को विदीर्ण करके, वही परम पुरुष — विराट् पुरुष — प्रकट हुए, सहस्रों जंघाओं, पैरों, भुजाओं तथा नेत्रों, और सहस्रों मुखों तथा सिरों सहित। (स्कन्ध 2, अध्याय 5, श्लोक 35)



स्थूल ब्रह्माण्ड एक विशाल स्वर्णिम अण्ड के रूप में कारण-जल पर एक सहस्र वर्षों तक विश्राम करता है, जब तक भगवान् उसमें जीवन का संचार नहीं करते और विराट् पुरुष प्रकट होने के लिए तैयार हो जाते हैं (श्लोक 32-34)।

ब्रह्माण्डीय शरीर के भीतर चौदह लोक

विराट् पुरुष के अब प्रकट हो जाने पर, ब्रह्मा वर्णन करते हैं कि किस प्रकार लोकों का सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उनके अंगों के भीतर स्थित है — उनकी कमर से नीचे सात अधोवर्ती लोक और ऊपर सात ऊर्ध्व लोक। वे समाज-व्यवस्था से ही आरम्भ करते हैं, प्राचीन पुरुष-सूक्त की प्रतिध्वनि करते हुए।

पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः ।

ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रो व्यजायत ॥ ३७ ॥

puruṣasya mukhaṁ brahma kṣatram etasya bāhavaḥ ūrvor vaiśyo bhagavataḥ padbhyāṁ śūdro vyajāyata

अर्थ: ब्राह्मण इस विराट् पुरुष के मुख का प्रतिनिधित्व करते हैं, क्षत्रिय उनकी भुजाओं का; वैश्य भगवान् की जंघाओं से प्रकट हुए, और शूद्र उनके चरणों से। (स्कन्ध 2, अध्याय 5, श्लोक 37)

तत्पश्चात् ब्रह्मा स्वयं लोकों को विराट् पुरुष के शरीर पर अंकित करते हैं। अधोवर्ती लोक तथा पृथ्वी उनके निचले अंगों में स्थित हैं; भुवर्लोक, पृथ्वी तथा स्वर्ग के बीच का क्षेत्र, उनकी नाभि में; स्वर्लोक, इन्द्र का स्वर्ग, उनके हृदय में; महर्लोक उनके वक्षःस्थल में; जनलोक उनके गले में; तपोलोक उनके उर में; और सत्यलोक, ब्रह्मा का तुलनात्मक रूप से शाश्वत धाम, उनके सिरों में। नीचे, सात पाताल-लोक क्रमशः स्थित हैं — अतल उनकी कमर में, वितल उनकी जंघाओं में, पवित्र सुतल (प्रह्लाद तथा बलि का, और वामन-रूप में स्वयं भगवान् का धाम) उनके घुटनों में, तलातल उनकी पिण्डलियों में, महातल उनके टखनों में, रसातल उनके पैरों के अगले भाग में, और पाताल उनके तलवों में। इस प्रकार परम पुरुष समस्त चौदह लोकों के जीवन्त समुच्चय के रूप में प्रकट होते हैं। अन्त में, ब्रह्मा तीन प्रमुख लोकों की एक सरल, वैकल्पिक व्यवस्था प्रस्तुत करते हैं।

भूलोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ।

स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥ ४२ ॥

bhūrlokaḥ kalpitaḥ padbhyāṁ bhuvarloko 'sya nābhitaḥ svarlokaḥ kalpito mūrdhnā iti vā loka-kalpanā

अर्थ: एक अन्य व्यवस्था के अनुसार, भूलोक उनके चरणों में स्थित है, भुवर्लोक उनकी नाभि में, और स्वर्लोक उनके सिर में — इस प्रकार उस योजना में तीन लोकों की कल्पना की गई है। (स्कन्ध 2, अध्याय 5, श्लोक 42)

इसके साथ पञ्चम अध्याय समाप्त होता है। जो एक पुत्र के सरल प्रश्न — सृष्टिकर्ता भी ध्यान क्यों करते हैं? — के रूप में आरम्भ हुआ था, वह ब्रह्माण्ड के एक सम्पूर्ण दर्शन में खुल गया है, जो स्वयं ईश्वर का शरीर है, गुणों की प्रथम हलचल से लेकर चौदह लोकों में से अन्तिम तक।



समाज के चार वर्ण विराट् पुरुष से प्रकट होते हुए दिखाए गए हैं — ब्राह्मण उनके मुख से, क्षत्रिय उनकी भुजाओं से, वैश्य उनकी जंघाओं से, और शूद्र उनके चरणों से (श्लोक

37)।

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. स्वयं सृष्टिकर्ता भी स्वयं से परे संकेत करते हैं। ब्रह्मा, जो नारद की प्रशंसा स्वीकार कर सकते थे, इसके बजाय यह स्वीकार करते हैं कि उनकी आभासी महिमा वस्तुतः भगवान् की है; जब तक हम स्रोत के पीछे के स्रोत को नहीं जान लेते, हम प्रतिबिम्ब को ही प्रकाश समझ बैठते हैं (श्लोक 9-14)।
2. केवल एक ही सत्ता है: भगवान्। सृष्टि की समस्त सामग्री, उसकी गतिविधि, नित्य काल, तथा जीवात्मा की प्रकृति में से कोई भी भगवान् वासुदेव से पृथक् होकर स्वयं में सत्य नहीं है (श्लोक 14)।
3. प्रत्येक मार्ग नारायण की ओर ले जाता है। योग, तपस्या, ज्ञान तथा समस्त आध्यात्मिक मार्ग एक ही गन्तव्य में समाहित हैं; साधनाओं की विविधता एक ही लक्ष्य को छिपाए रहती है (श्लोक 16)।
4. सृष्टि एक पावन क्रम में प्रकट होती है। भगवान् की माया तथा तीन गुणों से महत्, अहंकार, सूक्ष्म तथा स्थूल तत्त्व, इन्द्रियाँ तथा मन प्रकट होते हैं — एक सुव्यवस्थित अवतरण, न कि कोई आकस्मिक संयोग (श्लोक 18-31)।
5. ब्रह्माण्ड ईश्वर का शरीर है। लोक रिक्त आकाश में बिखरे हुए नहीं, अपितु विराट् पुरुष के जीवन्त स्वरूप के भीतर स्थित हैं, जिससे ब्रह्माण्ड का चिन्तन स्वयं भगवान् का चिन्तन बन जाता है (श्लोक 35-42)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस प्रकार के एक अध्याय को एक प्रकार की प्राचीन ब्रह्माण्ड-विद्या के रूप में पढ़कर वहीं छोड़ देना सरल है — तत्त्वों तथा लोकों का एक मानचित्र। किन्तु इसका हृदय कोई आरेख नहीं; यह विनम्रता का एक कार्य है। अस्तित्व में सबसे शक्तिशाली सृजित प्राणी, वह जिसे हम सब यदि मिलें तो “ईश्वर” कहने को प्रलोभित हो सकते हैं, अपने प्रिय शिष्य के प्रश्न के उत्तर का उपयोग एक ही कार्य के लिए करते हैं: एक ओर हट जाने तथा संकेत करने के लिए। मैं केवल सृजन करता प्रतीत होता हूँ, ब्रह्मा कहते हैं; जिस प्रकाश को तुम मेरा समझते हो वह उधार लिया हुआ है। इसमें हमारे लिए भी कुछ मुक्तिदायक है। हमारा इतना संघर्ष इस मौन विश्वास से उत्पन्न होता है कि हमारे अनुभव के केन्द्र में स्थित “मैं” ही यथार्थ कर्ता, यथार्थ स्वामी, यथार्थ स्रोत है। समस्त प्राणियों में ब्रह्मा ही, उस विश्वास को कोमलता से विघटित करते हैं — आत्मा को नकारकर नहीं, अपितु उसके यथार्थ आधार को प्रकट करके। यदि स्वयं ब्रह्माण्ड के पिता भी पूर्णतः वासुदेव में विश्राम करते हैं, तो शायद कर्तृत्व तथा नियन्त्रण के हमारे अपने छोटे बोझ भी वहीं विश्राम पा सकते हैं। यहाँ वर्णित विशाल ब्रह्माण्डीय शरीर हमें अभिभूत करने के लिए नहीं है; यह हमें यह दिखाने के लिए है कि हम पहले से ही भगवान् के भीतर रहते हैं, एक ऐसे स्वरूप में धारण किए हुए जहाँ प्रत्येक लोक का अपना स्थान है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, एक शान्त क्षण लेकर अपने चारों ओर के सामान्य जगत् को देखें — कमरे का आकाश, जिस वायु में आप साँस लेते हैं, प्रकाश की ऊष्मा, जल का स्वाद, आपके नीचे की ठोस भूमि। ये वही पाँच तत्त्व हैं जिनका यह अध्याय वर्णन करता है, भगवान् से एक-दूसरे से प्रकट होते हुए। जैसे-जैसे आप प्रत्येक को देखें, कोमलता से यह भाव अर्पित करें कि यह भी उन्हीं में विश्राम करता है। फिर, ब्रह्मा के उदाहरण का अनुसरण करते हुए, इस भाव को कोमलता से नीचे रख दें कि आपको अपने दिन का एकमात्र रचयिता होना है, और बिना जल्दबाज़ी के कुछ बार दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” तत्त्वों को देखने का कार्य, एक क्षण के लिए, उनके स्रोत को स्मरण करने का कार्य बन जाए।

उपसंहार

द्वितीय स्कन्ध का पञ्चम अध्याय उस प्रश्न का उत्तर देता है जिस पर सम्पूर्ण भागवत बार-बार लौटता है: एक भगवान् यह विशाल अनेक कैसे बन जाते हैं? ब्रह्मा का उत्तर एक शिक्षा तथा एक स्वीकारोक्ति दोनों है। किसी एक तत्त्व अथवा लोक का वर्णन करने से पहले, वे नारद द्वारा अर्पित सम्मान से स्वयं को रिक्त कर लेते हैं, सृष्टि का सम्पूर्ण भार नारायण, समस्त कारणों के कारण, पर रख देते हैं। केवल तभी वे, सावधानीपूर्वक अनुक्रम में, उस महान् अवतरण का अनुसरण करते हैं — माया गुणों को उद्वेलित करती हुई, महत् तथा अहंकार उत्पन्न होते हुए, पाँच तत्त्व रूप में गाढ़े होते हुए, इन्द्रियों तथा उनके देवता अपने स्थान ग्रहण करते हुए, ब्रह्माण्ड-अण्ड कारण-जल पर एक सहस्र वर्षों तक प्रतीक्षा करता हुआ, और अन्ततः विराट् पुरुष प्रकट होकर समस्त चौदह लोकों को अपने अंगों के भीतर धारण करते हुए। जो हमारे पास शेष रहता है वह मात्र ब्रह्माण्ड का एक चित्र नहीं, अपितु उसे देखने का एक ढंग है: ईश्वर के जीवन्त शरीर के रूप में, जिसमें स्वयं सृष्टिकर्ता भी एक श्रद्धालु सेवक हैं, और जिसके भीतर हम भी स्नेहपूर्वक धारण किए हुए हैं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), द्वितीय स्कन्ध, पञ्चम अध्याय, पृष्ठ 101-103।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम् • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र जी के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं और उनके अर्थ सार-रूप में दिए गए हैं। यह किसी भी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका की प्रतिकृति नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ कोई सम्बद्धता अथवा समर्थन निहित नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-2-adhyay-5-brahmand-ka-varnan.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट